शिक्षा में विषमता

डॉ. पूनम अग्रवाल
एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग
धर्मसमाज कॉलेज, अलीगढ़

भारत में शिक्षा का सवाल एक भूलभुलैया में फंसा हुआ है। इस क्षेत्र में किए जाने वाले सरकार प्रयत्न न सिर्फ नाकाफी हैं, बल्कि नीतियों के स्तर पर भी अंतर्विरोधों से भरे हैं। दूसरी तरफ निजी क्षेत्र के मंहगे स्कूलों ने अच्छी शिक्षा को एक छोटे से वर्ग का विशेषाधिकार बना डाला है। नतीजे में शिक्षा के क्षेत्र में बराबरी लाने की तमाम कोशिशों के बाबजूद हम पा रहे हैं शिक्षा विषमता बढ़ाने का सबसे बड़ा औजार बन गई है।

एक प्रसिद्ध लोककथा है– किसी ने चिडियों को एक गीत सिखाया, 'बहेलिया आएगा, जाल बिछायेगा, दाना डालेगा, लोभ में आकर फंसना नहीं'। सभी चिडियों ने लगातार यह रटना शुरू कर दिया। मगर एक दिन बहेलिया आया, उसने जाल बिछाया, दाना डाला और सभी चिडियां अपना मंत्र रटते हुए दाना खाने के लिए उतरीं और जाल में फंस गई। इसी तर्ज पर आजादी के बाद से हम रटते आये हैं– समाज में गैर–बराबरी खत्म करने के लिए शिक्षा, हर स्तर पर, हर आयामों से बराबरी वाली शिक्षा, अज्ञान और दमन से मुक्ति दिलाने के लिए शिक्षा, महिलाओं, पिछड़े वर्ग के लोगों व अल्पसंख्यकों को समानता का हक दिलाने में प्रभावी साधनवाली शिक्षा, अधिक प्रबुद्ध मानवीय समाज के लिए शिक्षा इत्यादि। सरकारी स्तर पर बने लगभग सभी आयोगों और समितियों ने इसे दुहराया। फिर भी हम लगातार गैर–बराबरी को बढ़ावा देने वाली, भेदभावपूर्ण चरित्र वाली शिक्षा के दलदल में फंसते जा रहे हैं और चिडियों की तरह बराबरी का मंत्र भी पढ़ते जा रहे हैं।

आज आलम यह है कि शिक्षा कई मानदंडों पर व्यापक असमानता से भरी हुई है। सरकारी स्तर पर भी आज यह स्वीकार किया जा रहा है कि अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति दोनों में ही साक्षरता की वृद्धि दर तेज तो हुई है परंतु साथ में यह भी सत्य है कि अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति और अन्य समुदायों के बीच साक्षरता दर का अंतर बढ़ता जा रहा है।

औपचारिक स्कूल, अनौपचारिक स्कूल, नवोदय विद्यालय, सैनिक और दून सरीखे विद्यालय, दिल्ली पब्लिक स्कूल, सिंदिया मार्का विद्यालय, सहायता प्राप्त पब्लिक स्कूल, गेर सहायता प्राप्त स्कूल और अब गरीबों व दूरदराज के दुर्गम क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संसाधन की मदद से चलने वाले वैकल्पिक स्कूल–शिक्षा की कितनी असमान परतें दिन–ब–दिन बिछती जा रही हैं। इसमें 'जितना गुड़ डालोगे उतना ही मीठा होगा' की कहावत चलती हे। यानी जितना पैसा खर्चोंगे उतनी ही उम्दा शिक्षा मिलेगी। शिक्षा की पाठ्य पुस्तकें तथा अप्रत्यक्ष पाठ्यचर्या, वंचितों, दलितों, अनुसूचित जाति व

 Copyright 2018.All rights reserved.

अनुसूचित जनजाति के प्रति न केवल भेदभाव से भरा हैं बल्कि राष्ट्र के विकास में इनके योगदान को भी नहीं स्वीकारती। इसके साथ–साथ इनके रहन–सहन के तौर–तरीकों और भाषा के प्रति उपेक्षा के साथ–साथ हीनता का भाव भी अक्सर प्रदर्शित करती हैं।

आजादी के बाद शिक्षा के सामने जो चुनौतियां थीं उनमे ंसे एक प्रमुख थी–संख्या की दृष्टि से शिक्षा के अवसरों में समानता लाना। इसका सीधा–सीधा मतलब यह था कि आबादी के उस बड़े हिस्से को जो सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व ऐतिहासिक कारणों से स्कूल की परिधि से बाहर रह गया था, औपचारिक शिक्षा के दायरे में लाना संवैधाकिन दायित्व था। इसे राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों ने भी समय–समय पर स्वीकारा। शिक्षा के सामाजिक चरित्र को न्यायपर्ण और समतामूलक बनाने के लिए संख्यात्मक पहुॅच का यह मामला निश्चित रूप से महत्वपूर्ण है। इस लिहाज से यह देखने में की कोशिश प्रासंगिक होगी कि आजादी के लगभग 53 वर्षों के बाद आज सरकार इस चुनौती से पिटने में कहां तक कामयाब हुई है।

1991 की जनगणना के अनुसार आदिवासी आबादी का सिर्फ 30 प्रतिशत ही साक्षर है। 1961 की तुलना में आदिवासी साक्षरता दर (जोकि 9 प्रतिशत थी) 1991 तक लगभग तीन गुना बढ़ी। फिर भी यह सामान्य जनसंख्या के 5.2 प्रतिशत साक्षरता दर से (1991 की जनगणना के अनुसार) बहुत कम है। इतना ही नहीं बल्कि सामान्य जनसंख्या की साक्षरता दर व आदिवासी जनसंख्या की साक्षरता दर के बीच की खाई आज और भी चौड़ी हुई है। 1971 में यह खाई 18 प्रतिशत थी जोकि 1991 आते–आते बढ़कर 22 प्रतिशत हो गई। 1981 की जनगणना के दौरान देश में 48 जिले ऐसे थे जिनमें अनुसूचित जनजातियों में महिला साक्षरता दर दो प्रतिशत से भी कम थी।

साक्षरता की दर ही यह खाई क्षेत्र के आधार पर भी पाई जाती है। मध्यवर्ती भारत की तुलना में उत्तर–पूर्वी राज्यों की साक्षरता दर ऊॅची है। सन् 1991 में राजस्थान के आदिवासियों के बीच यह साक्षरता दर लगभग 19 प्रतिशत थी जबकि मिजोरम में यह लगभग 80 प्रतिशत थी। साक्षरता दर की यह असमानता राज्य के अंदर भी तरह–तरह से पसरी हुई है। उदाहरण के लिए सन् 1981 की जनगणना के अनुसार मेघालय राज्य के नगाओं के बीच सारक्षरता दर 81.9 प्रतिशत थी जबकि मीकिर में यह महज 13.1 प्रतिशत थी। उसी तरह ओडिशा में खुल्लीश जनजाति के बीच यह साक्षरता दर 36 प्रतिशत थी जबकि वहीं मनकेरडिया जनजाति के बीच यह 1. 1 प्रतिशत पाई गई। आदिवासी महिलाओं की साक्षरता दर सन् 1991 में 18 प्रतिशत ही थी, जबकि सामान्य महिलाओं की साक्षरता दर 39 प्रतिशत थी। सन् 1971 में सामान्य महिलाओं व आदिवासी महिलाओं के बीच साक्षरता की खाई 14 प्रतिशत थी जो कि 1991 में बढ़कर 21 प्रतिशत हो गई। क्षेत्रीय अधार पर यह खाई और भी चौड़ी है। मिजोरम में जहां आदिवासी महिलाओं की सारक्षरता दर 79 प्रतिशत थी। वहीं राजस्थान में यह दर 4.4 प्रतिशत थी। शिक्षा में लिंग–असमानताओं का संकेत इस तथ्य से मिलता है कि स्कूल जाने वाले लड़कों की संख्या, लड़कियों से 1.5 गुना अधिक है। यह विषमता ग्रामीण क्षेत्रों में और अधिक है। प्राथमिक स्तर पर अनुसूचित

 Copyright 2018.All rights reserved.

जाति/जनजाति के बच्चों का प्रतिशत उनकी आबादी के अनुपात में है पर माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर उनकी भागीदारी में भारी गिरावट आई है। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति आयेाग की रपट (प्रथम रपट 1992–93) का मानना है कि सभी समुदायों की तुलना में अनूसचित जातियों और अनुसूचित जनजातियेां की प्राथमिक, मिडिल और माध्यमिक स्तर पर पढ़ाई छोड़ने की दर चौकाने वाली हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि प्रौढ़ हो चुके लोकतंत्र में हम संख्यात्मक दृष्टि से शिक्षा के अवसरों की बराबरी लाने में औधे मुंह गिरे हैं।

शिक्षा में बराबरी और सामाजिक न्याय की बात करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) कहती है, 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)' कहती है, 'राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का मूल मंत्र यह है कि एक निश्चित स्तर तक हर शिक्षार्थी को बिना किसी जात–पात, धर्म स्थान या लिंग भेद के, लगभग एक जैसी अच्छी शिक्षा उपलब्ध हो।' इस उद्धरण में सरकार एक तरफ तो स्पष्ट रूप से बिना किसी भेदभाव के सभी के लिए एक जैसी शिक्षा मुहैया करवाने की बात करती है तो दूसरी तरफ वहीं अनौपचारिक शिक्षा से समांतर औपचारिक शिक्षा की एक और परत बिछाने की बात भी करती हैं। अनौपचारिक शिक्षा के बारे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (1992 संशोधन सहित) का कहना है, 'ऐसे बच्चे जो बीच में स्कूल छोड़ गए हैं, या जो ऐसे स्थानों पर रहते हैं जहॉ स्कूल नहीं है या जो काम में लगे हुए हैं, और वे लड़कियां जो दिन के स्कूल में पूरे समय नहीं जा सकती, इन सब के लिए एक विशाल और व्यवस्थित शिक्षा का कार्यक्रम चलाया जाएगा। यह सुनिश्चित करने के सभी उपाय किए जाऐंगें कि अनौपचारिक शिक्षा का स्तर औपचारिक शिक्षा के तुलनीय हो। इस उद्धरण से यह साफ पता चलता है कि स्वतंत्रता के बाद पहली बार सरकार 1986 में दस्तावेजी आधार पर यह स्वीकार करती है कि राज्य स्कूल न जा पाने वाले आधे बालकों तथा दो तिहाई बालिकाओं को औपचारिक स्कूल की सुविधा मुहैया नहीं करवाएगा। इसीलिए सरकार ने इन स्कूल न जाने वाले बालक, बालिकाओं के लिए, जिनमें अधिकांश बाल श्रमिक हैं, स्कूल के समांतर अनौपचारिक शिक्षा की अवधारणा का समर्थन दिया। अनौपचारिक शिक्षा का आगे बढ़ाने का यह फैसला, वह भी बड़े पैमाने पर, एक प्रकार से बालश्रम को लंबे समय तक मौजूदा रूप में बरकरार रखने की मौन सहमति देता है, शिक्षा का यह परतीकरण यहीं नहीं रूकता वह आगे बढ़कर विशेष प्रतिभा को प्रोत्साहन देने के नाम पर 'नवोदय विद्यालय' नामक एक और परत बिछाने की घोषणा करता है। अब अगर हम इन तीनों ही परतों (औपचारिक स्कूल, अनौपचारि धारा के स्कूल, और नवोदय विद्यालय) के बारे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की 'एक जैसी अच्छा शिक्षा' उपलब्ध करवाने की घोषणा को देखें तो सरकार की मंशा और अपनी ही घोषणा के प्रति उसकी ईमानदारी की पोल खुल जाती है। नवोदय विद्यालय, औपचारिक विद्यालय और अनौपचारिक विद्यालय के प्रति छात्र, प्रति वर्ष आने वाले खर्चों में पाया जाने वाला बड़ा अंतर यह साफ–साफ बतलाता है कि शिक्षा के तीनों अलग–अलग परतें शैक्षिक गुणवत्ता की दृष्टि से कितनी असमान हो सकती हैं। ध्यान देने की बात है कि नवोदय विद्यालय में प्रति वर्ष प्रति छात्र खर्च (1990 के मूल्य पर आधारित) दस हजार रूपये से ऊपर, सरकारी प्राथमिक शालाओं में सात सौ रूपये के आसपास व अनौपचारिक केनद्रों में सौ रूपये के आसपास है। शिक्षा में लागत के स्तर पर इतना बड़ा अंतर भला किस

 Copyright 2018.All rights reserved.

तरह शिक्षा की एक समान गुणवत्ता बरकरार रखेगा यह सोचने वाली बात है। प्रतिभाशाली छात्रों के लिए नवोदय किस्म के विद्यालय की स्थापना वास्तव में अपनी अवधारणा में ही यह मानकर चलती है कि कुछ बच्चे जन्म से ही प्रतिभाशाली होते हैं और बाकी बच्चे जन्म से ही फिसड्डी। इनमें सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक कारकों का योगदान नहीं होता। साथ में यह भी कि अच्छी शिक्षा का हक सिर्फ तथाकथित जन्म से ही प्रतिभाशाली माने जाने वाले छात्रों का ही है, बाकियों का नहीं। वस्तुतः यह मानस 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा–नीति में घोषित सभी के लिए एक जैसी अच्छी शिक्षा' के विरोध में जाता है। राममूर्ति समिति की रपट (1990) यह मानती है कि अधिकतर ग्रामीण बच्चे गरीबी की हालत में और निम्न स्तर के स्कूलों में शिक्षा पाते हैं। पाउलो फ्रेरे जैसे प्रतिष्ठि शिक्षाविद ने अपने एक साक्षात्कार में कहा था कि उनके परिवार के पास प्रायः खाने के लिए पर्याप्त भोजन नहीं होता था, इस वजह से वे स्कूल में पिछड़ गए। परंतु इन सारी बातों को दरकिनार करते हुए सरकार द्वारा नवोदय विद्यालय का खोला जाना यह बताता है कि वह किस नीयत के साथ शिक्षा में बराबरी लाने की बात करती है।

शिक्षा के क्षेत्र में एक और परत समाज में पाई जाती है निजी स्कूलों की यह निजी स्कूल सरकारी स्कूलों या सरकार द्वारा वित्तीय इमदाद प्राप्त स्कूलों की तरह मुफ्त शुल्क वाले नहीं होते बल्कि अपने–अपने अनुसार लोगों से शुल्क बसूल करते हैं। यह सरकार की ओर से सीधे तौर पर खोले नहीं जाते और न ही इन्हें वित्तीय सहायता दी जाती है। मगर जमीन खरीद संबंधी छूट तथा अन्य करों में दी जाने वाली छूट की वजह से अप्रत्यक्ष रूप से सरकार द्वारा प्रोत्साहित होते हैं। हालत यह है कि आज कुल शिक्षा में ऐसे स्कूलों की भागीदारी तेजी से बढ़ रही है। यही स्थिति अगर भविष्य में भी कायम रही तो दो–तीन दशकों में ऐसे स्कूल, सरकारी स्तर के स्कूलों को हाशिए में धकेलने की हैसियत में आ जाएंगे। गीता जी। किंगडौन ने अपने एक लेख–'प्राइवेट स्कूलिंग इन इंडिया' में बड़े प्रामाणिक और रूचिकर ढंग से ऐसे निजी स्कूलों की बढ़त को दिखलाया है। विभिन्न सरकारी आंकड़ों के आधार पर उन्होंने कहा है कि शहरी क्षेत्रों में कुल प्राथमिक शिक्षा स्कूलों में ऐसे निजी स्कूलों की भागीदारी सन् 1778 से 1986 के बीच नौ प्रतिशत से बढ़कर 17 प्रतिशत हो गई। इसी बीच उत्तर प्रदेश के निजी स्कूलों में छात्रों के नामांकन में 4,18,403 की वृद्धि हुई जबकि सरकार और सरकारी वित्त प्राप्त स्कूलों में यह वृद्धि इसकी तुलना में बहुत कम 1,37,177 रही दूसरे शब्दों में कहें तो मान्यता प्राप्त निजी स्कूलों में यह नामांकन वृद्धि, सरकारी तथा सरकारी वित्त प्राप्त स्कूलों की तुलना में लगभग तीन गुनी रही। इसको एक अन्य तरीके से देखें तो कहा जा सकता है कि 1978 से 1986 के बीच प्राथमिक शालाओं में नामांकन में हुई कुल वृद्धि की 75 प्रतिशत भागीदारी मान्यता प्राप्त निजी स्कूलों ने छीन ली। इसी तरह सरकारी व सरकारी वित्त प्राप्त कनिष्ठ स्कूलों की तुलना में मान्यता प्राप्त कनिष्ठ निजी स्कूलों की नामांकन वृद्धि डेढ़ गुना ज्याद रही। इस प्रार कनिष्ठ स्कूलों के नामांकन में हुई वृद्धि की 64 प्रतिशत हिस्सेदारी मान्यता प्राप्त कनिष्ठ निजी स्कूलों की रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् 1978 से 1986 के बीच मान्यता प्राप्त प्रारंभिक (कक्षा 8 तक) निजी स्कूलों की हिस्सेदारी में लगातार तेजी के साथ वृद्धि हुइ है। शहरी भारत के संदर्भ में भी हालत कुछ उत्तर प्रदेश जैसी

 Copyright 2018.All rights reserved.

ही है। भारत के संदर्भ में भी 1978 से 1986 के बीच सरकारी प्राथमिक स्कूलों की तुलना में निजी स्कूलों का नामांकन दो गुना रहा। सरकारी मदद प्राप्त स्कूलों की तुलना में यह तिगुना था। 1978–86 के बीच प्राथमिक स्कूलों के नामांकन में हुई वृद्धि की 57 प्रतिशत हिस्सेदारी निजी प्राथमिक स्कूलों की रही। इसका हितार्थ यह है कि निजी स्कूल तेजी इसका हितार्थ यह है कि निजी स्कूल तेजी के साथ लोगों को अपनी तरफ खींचने में सफल हो रहे हैं। जिनके पास अपने बच्चों को पब्लिक स्कूलों में भेजने का विकल्प है वे सरकारी स्कूलों की जगह तथाकथित पब्लिक स्कूल का चुनाव करते हैं। इसका मतलब है कि सरकारी स्कूलों की जगह तथाकथित पब्लिक स्कूल का चुनाव करते हैं। इसका मतलब है कि सरकारी स्कूल शैक्षिक गुणवत्ता की दृष्टि से आम जन में अपना विश्वास खोते जा रहे हैं। आम जन में सरकारी स्कूलों के प्रति खोती विश्वसनीयता के पीछे यह तथ्य भी काम करता है कि ग्रामीण इलाकों के लगभग एक तिहाई स्कूल अभी भी एकल–शिक्षक स्कूल हैं। एक तिहाई मात्र दो शिक्षकीय हैं अर्थात् दो तिहाई स्कूलों में दो या उससे कम शिक्षक हैं। कई प्राथमिक स्कूलों में इतनी न्यूनतम सुविधाएं भी नहीं हैं जो शिक्षा के गुणवत्ता के स्वीकार्य स्तरों के लिए अनिवार्य हैं। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि निजी स्कूलों की संख्या तथा इनमें बढ़ रही नामाकंन दर (जो कि सरकारी स्कूलों की अपेक्षा बहुत ज्यादा है) दोनों ही स्तर पर निजी स्कूलों को मिल रही बढ़त के पीछे, सरकारी स्कूलों को गुणवान बनाए रखने में सरकार की असफलता काम कर रही है। सभी जानते हैं कि निजी स्कूलों में जो शुल्क लिया जाता है उसे गरीब तबका चुकाने में आमतौर पर असमर्थ होता है। अतः ऐसी स्थिति में सरकारी स्कूल गरीबों का स्कूल बनकर रह गया है।

शिक्षा जगत में बिछी उपरोक्त परत यह साफ–साफ बताती है कि शिक्षा आज दो वर्गों के लिए शिक्षा और दूसरी अमीर वर्गों के लिए शिक्षा। राममूर्ति समिति की रपट (1990) इस पर टिप्पणी करते हुए अपने प्रस्तावना में कहती है, 'गत तैतालिस वर्षों के दौरान हमने आर्थिक विकास के एक ऐसे मॉडल का अनुसरण किया है जिसके परिणामस्वरूप दो भारतों का सृजन हुआ है– एक धनी लोगों का भारत और दूसरा निर्धन लोगों का। देश में एक ऐसे सुविधा प्राप्त वर्ग का जन्म हुआ है जिसका राजनैतिक तथा आर्थिक शक्ति और धन के स्रोतों पर एकाधिकार है। संस्कृति तथा शिक्षा पर इसी वर्ग का नियंत्रण है। यह वर्ग सर्वत्र सुदृढ़ रूप से स्थापित है। यही वर्ग है जिसके हितों की पूर्ति हमारी शिक्षा को करनी पड़ती है। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था की भांति शिक्षा में भी समांनतर प्रणालियां चालू हो गई है– एक धनी लोगों के लिए और दूसरी निर्धन लोगों के लिए।'

सन् 1964–66 में कोठारी आयोग ने शिक्षा के क्षेत्र में फैली इस गैर–बराबरी को तोड़ने के लिए 'सार्वजनिक स्कूल प्रणाली' (साझा स्कूल) की अवधारणा सुझाई थी। इसे 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रपट' (राममूर्ति, 1990) में शिक्षा के क्षेत्र में समानता और सामाजिक न्याय के लिए पहले कदम के रूप में स्वीकार किया था। सार्वजनिक स्कूल प्रणाली की विशेषताएं हैं– सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य भेदभाव के बिना सब बच्चों के लिए स्कूल का दरवाजा समान रूप से खुला रखना। शिक्षा की पहुॅच योग्यता के आधार पर करना वगैरह। कहने की आवश्यकता नहीं है कि

 Copyright 2018.All rights reserved.

अगर सरकार कोठारी आयोग के 'सार्वजनिक स्कूल प्रणाली' के प्रस्ताव को मान लेती और उस पर ईमानदार इच्छा शक्ति के साथ काम करती तो आज शिक्षा में असमानता की जितनी अधिकि परतं हैं वह नहीं बिछी होतीं। 'सार्वजनिक स्कूल प्रणाली' को साकार करने के प्रति सरकार कितनी ईमानदार रही है। इसका पता इस बात से चलता है कि सरकारी क्षेत्र में ही सैनिक स्कूल, केन्द्रीय विद्यालय तथा नवोदय विद्यालय (विद्यार्थी के भिन्न वर्गों के लिए) सरकार खोलती गई और शिक्षा में असमान परतें बिछाती गई। पब्लिक स्कूल, निजी प्रबंध वाले अंग्रेजी माध्यम के स्कूल, कैपिटेशन फीस लेने वाले स्कूल और परीक्षाओं के लिए तैयार करने वाले मंहगे स्कूल बड़ी संख्या में खुलते गए। राममूर्ति समिति ने (1990) 'सावजनिक स्कूल प्रणाली' को विफल करने वाले कारकों के रूप में इन्हें देखा और अपनी सिफारिश में कहा है कि मंहगे निजी स्कूलों को सार्वजनिक स्कूल प्रणाली में शामिल करने की संभावना की खोज करनी चाहिए। इसके लिए प्रोत्साहन देने, निरूत्साहित करने और कानून जैसे उपायों का इस्तेमाल किया जा सकता है। सरकार के रवैये पर सटीक टिप्पणी करने के लिए 'भारत जनविज्ञान जत्था' तथा 'प्रारंभिक एवं सामाजिक शिक्षा केन्द्र', शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय के सहयोग से निर्मित एक दस्तावेज 'प्रारंभिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लिए लोकशाला कार्यक्रम' (1995) कता है कि अगर समान अवसरों के आधार पर बच्चों के शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करना हो, जैसा कि बाल अधिकार समझौते की अपेक्षा भी है तो देश भर में साझास्कूल प्रणाली की अवधारणा लागू करनी होगी। इस अवधारणा की, जो दरअसल स्वतंत्रता संग्राम की देन है, कोठारी आयोग (1964–66) ने भी पैरवी की थी। 1968 और सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा सन् 1992 की संशोधित नीति में भी बार–बार इस पर बल दिया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति यह मानती है कि अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए शैक्षिक कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए जाएं कि उनकी समृद्ध सांस्कृतिक पहचान बनी रहे और उन्हें इस बात का ज्ञान भी रहे। जनजातीय संस्कृति की पहचान केवल जनजातीय लोगों से ही संबंधित नहीं है बल्कि वह स्कूल जाने वाले सभी बच्चों से भी संबंधित है। गीता बी. नामबीसन ने दक्षिण एशियाई शिक्षा सम्मेलन में पाठ्य पुस्तकों पर एक पर्चा पढ़ा जिसमें 'कुन्डू' के एक अध्ययन का जिक्र किया है। कुन्डू ने उदाहरण सहित दिखाया है कि पाठ्यपुस्तकों में दिए गए कुछ नामों को आदिवासी नामों को ध्वनियों के अनुसार बदल देने को ही पर्याप्त मान लिया जाता है। एक उदाहरण में उनहोंने बताया कि किस प्रकार पाठ्यपुस्तक के एक चरित्र 'मि0 राय' को ओडिया आदिवासी नाम की ध्वनि के अनुसार बदलकर 'मि0 मज्जी' कर दिया गया और शेष पाठ को वैसा ही रखा गया। प्रख्यात शिक्षाविद कृष्ण कुमार इस सिलसिले में अपनी पुस्तक 'शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व' में दिलचस्प अध्ययन का जिक्र करते हैं। उन्होने मध्य प्रदेश के 'बाल भारती' श्रृंखला में शामिल 41 कहानी पाठों में ऐसे सिर्फ दो में ऐसे केन्द्रीय चरित्र पाए जिनके बारे में कहा जा सकता है कि वे आदिवासी पृष्ठभूमि के थे।

इस अध्ययन के दौरान उन्होने पाया कि अनुसूचित जाति और जनजाति के सदस्यों की संख्या मध्य प्रदेश की कुल जनसंख्या का एक तिहाई है। उन्होंने पाया कि हिंदी की पढ़ाई में इस्तेमाल होने वाली पुस्तकों में इन दो समूहों का प्रतिनिधित्व, मध्य

 Copyright 2018.All rights reserved.

प्रदेश के समाज में इन समूहों की उपस्थिति के अनुपात में नहीं है। भूगोल की पाठ्यपुस्तकों में भी अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधित्व के नाम पर स्थानीय जनजातियों की विशेष प्रथाओं और आदतों का संक्षिप्त विवरण और उनके अनुष्ठानिक नृत्य की एक तस्वीर भर है। इन पाठों में दिया गया भूगोल घिसी–पिटी, रूढ़ छवि पर आधारित होता है और इस छवि को पुष्ट करता है। पाठ्य पुस्तकों के इस रूढ़ और गैरबराबरी वाले चरित्र पर तीखी टिप्पणी करते हुए लेखक ने इसी पुस्तक में कहा है कि 'भारत में निर्धारित पाठ्यक्रम और पाठ्य सामग्रियों में जिन समूकों के दृष्टिकोंणों और अर्थों का प्रतिनिधित्व होता है, वे समाज के वर्चस्वशाली समूह हैं। दलित समूहों की दृष्टि और उनके मायनों का वर्णन पिछड़ेपन के उदाहरण और प्रगति के अवरोधों के रूप में होता है। प्रोढ़ शिक्षा के लिए तैयार की गई पाठ्य सामग्री में इस प्रवृत्ति की सबसे तीव्र अभिव्यक्ति होती है। लेखक स्कूली ज्ञान पर वर्चस्वशाली जातियों के कब्जे को तोड़ने में गांधीजी की बुनियादी शिक्षा (नई तालीम) को एक क्रांतिकारी कदम मानता है। उसका कहना है कि प्रतीक रूप में, स्कूल में स्थानीय दस्तकारी और उत्पादन से जुड़े कौशलों और ज्ञान को लागू करने का प्रस्ताव देकर गांधी स्कूली पाठ्यक्रम में ज्ञान की उन प्रणालियों को लागू करने का प्रस्ताव कर रहे थे जिनका विकास भारतीय समाज के कारीगर, किसान और सफाईकर्मी जैसे दलित समूहों ने किया और जिनका इन तबकों से संबंध बना हुआ था। इनमें वे समूह भी आ जाते हैं जिन्हें आज अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां कहा जाता है। सदियों से इन समूहों को शिक्षा से वंचित रखा गया और ज्ञान की जिन प्रणालियों का संबंध उनसे था उन्हें ज्ञान का दर्जा ही नहीं दिया गया।

राष्ट्र निर्माण के साथ–साथ अभी तक की सभ्यता–संस्कृति के विकास में इन वंचितों का कोई योगदान भी रहा है, इस बात की स्वीकृति तक अभी अपने शुरूआती दौर में है। इतिहास लेखन में इस बात को देखा–पढ़ा जा सकता है। यही वजह है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आदिवासियों के अच्छे–खासे योगदान के बाबजूद स्कूली इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में इसे स्वीकार करने की चेतना को कोई पुष्ट प्रमाण नही मिलता है। कुल मिला–जुला कर मामला सिर्फ यह नहीं है कि पाठ्य पुस्तकें इन समुदायों की ऐतिहासिक भूमिका की गहरी उपेक्षा करती हैं, बल्कि यह भी इनके बारे में वह कुछ ऐसे शैक्षिक हालात पैदा करती हैं जिनके चलते इन समुदायों के छात्रों की आत्मछवि ध्वस्त होती है।

सभी जानते हैं कि देश की आधा आबादी (महिलाओं) को समाज और राष्ट्र को प्रभावित करने वाले विभिन्न पदों, संस्थानों तथा सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक हैसियत से दूर रखा गया है। अर्थात् उन्हें समाज के शक्ति समीकरणों से ऐतिहासिक रूप से अलग रखा गया है। पाठ्य पुस्तकें वह जगह हो सकती है जहां महिलाओं के साथ इस विभेद का प्रतिरोध हो और खासकर उन्हीं के भीतर इस विषमता से लड़ने की चेतना भरी जा सके। मगर दिखाई यह पड़ता है कि न सिर्फ पाठ्यक्रम, बल्कि पाठ चर्चाएं भी उस लैगिंक भेद–भाव और पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं जो समूचे परिवेश में मौजूद है। राममूर्ति समिति (1990) ने भी इस तथ्य की ओर ध्यान खींचा कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) की पुस्तकों में स्पष्ट लिंग संबंधी पूर्वाग्रह है। इसमें

 Copyright 2018.All rights reserved.

महिला के बजाय पुरूष पात्रों की प्रधानता है। इसमें महिला पात्रों को निक्रिय या उदासीन और घरेलू वातावरण में प्रदर्शित किया गया है जबकि पुरूषों को अधिकार और प्रतिष्ठा की स्थिति में दिखाया गया है। श्रमशक्ति की एक रपट यह शिकायत करती है कि लड़कियों और महिलाओं को शायद ही कभी सार्थ क्रिया–कलापों से जुड़ी हुई भूमिकाओं में चित्रित किया गया हो। 1982 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने पाठ्यचर्या के माध्यम से 'महिलाओं की स्थिति8 नामक एक अध्यापक निर्देशिका प्रकाशित की। इसमें गति, बल और दाब जैसी विज्ञान की अवधारणाओं को समझाने के लिए कुछ दैनिक जीवन–यापन की चीजों के उदाहरण दिए गए हैं। इसमे कोशिश यह की गइ है कि महिलाओं के दैनिक अनुभव को भी जोड़ा जाए ताकि यह पुरूषों के एकांगी अनुभव तक सीमित होने के दोष से मुक्त हो जाएं। जो उदाहरण इसमें दिए गए वे थे– गति के लिए दूध बिलोन, सिलाई मशीन, बर्तन साफ करना इत्यादि। दाब को समझाने के लिए भाप के दबाव से खाना पकाना इत्यादि। राममूर्ति इस पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि 'ये उदाहरण घरेलू कामो के हैं जो परंपरा से महिलाओं से जुडे हैं। इस अध्यापक–पुस्तिका में कुछ उदाहरण ऐसे भी दिए जा सकते थे जो महिलाओं और पुरूषों दोनों के लिए समान हों रपट मानती है कि वास्तव में आंख मूंद कर यांत्रिक ढंग से परिवर्तन करने से लिंग संबंधी मौजूदा भूमिका ही पुष्ट होती है।

इस तरह के लैगिंक भेदभाव न केवल पाठ्यपुस्तकों में मिलते हैं बल्कि स्कूल के कार्यकलापों में अप्रत्यक्ष पाठ्यचर्या (अध्यापकों की अभिवृत्तियां, दैनिक गतिविधियां आदि) में खूब दिखाई पड़ते हैं। ऐसे ही कुछ उदाहरणों को राममूर्ति समिति की रपट समाने रखती है। इसमें एक हैं, लड़कों, तुम्हें ध्यान से पढ़ना चाहिए और लड़कियों, तुम्हारा तो किसी तरह विवाह हो जाएगा। दूसरा उदाहरण है– 'चट्टन, (एक लड़का) अगर तुम शरारत करते रहोगे तो तुम्हें लड़कियों के साथ बैठना पड़ेगा।' इन उदाहरणों से पता चलता है कि लिंग विषयक भेदभाव अध्यापकों के व्यवहार में भी बद्धमूल होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विकास के हाशिए पर ऐतिहासिक रूप से धकेले गऐ दलितों, वंचितों, अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं को हम न केवल शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराने में विफल रहे हैं, बल्कि उन्हें अमीरी–गरीबी के हिसाब से अच्छी शिक्षा और दोयम दर्जे की शिक्षा को स्वीकार करने के लिए भी बाध्य कर रहे हैं। इसके साथ वर्तमान पाठ्यपुस्तकों सहित संपूर्ण शैक्षिक परिवेश का सामाजिक चरित्र लगातार इन वर्गों को समृद्ध करने की जगह उनकी आत्मछवि को ही ध्वस्त करने में लगा है।

अगर हम इन हालात को बदलना चाहते हैं तो हमें संपूर्ण शैक्षिक परिवेश में क्रांतिकारी तब्दीलियां लानी होंगी। राममूर्ति समिति की प्रस्तावना के अनुसार जगह–जगह पैबंद लगाने से अब कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। समय की मांग यह है कि ऐसी नई शिक्षा के लिए जन आंदोलन छेड़ा जाए जो इने–गिने लोगों के लिए नहीं बल्कि सर्वसाधारण के लिए हो। जब तक लोकमत का दबाव निरंतर नहीं डाला जाता

 Copyright 2018.All rights reserved.

और लोगों द्वारा शांतिपूर्ण कार्यवाही नहीं की जाती, तब तक वर्तमान गैर–बराबरी के इर्द–गिर्द रची बसी शिक्षा–प्रणाली में बदलाव की संभावना नहीं है।

संदर्भग्रंथ सूची–

1. 'कुरूक्षेत्र मासिक विकास को समर्पित ' मासिक, अंकः11 सितम्बर, 2013
2- शर्मा,राजकुमारी; पाराशर, डॉ. मधु; दुबे, प्रो. एस.के.तिवारी, अंजना (2016) *"समसामयिक/समकालीन भारत और शिक्षा"*, राधा प्रकाशन मन्दिर, पृश्ठ सं. 230
3- शर्मा, आर. ए . (2011), *" मानव मूल्य एवं शिक्षा "*, आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ, पृश्ठ सं. 279

IJARSE

 Copyright 2018.All rights reserved.